Volume 3; Issue 2
April to Jun 2026

E-ISSN: 3048-6742

Sanskriti-Samvahika
संस्कृति-संवाहिका

Peer Reviewed Indexed Refereed Journal

Quarterly Journal

Dr. Ashwini Devi
Editor-in-Chief

Sanskriti-Samvahika संस्कृति-संवाहिका
E-ISSN: 3048-6742
https://sanskritisamvahika.in
Volume 3; Issue 2; April to Jun, 2026; Page No. 15-21
Peer Reviewed, Indexed and Refereed Journal

वैदिक नवजागरण और स्त्री-सशक्तिकरण: स्वामी दयानन्द सरस्वती की दृष्टि में नारी

डॉ. अमित शर्मा
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
डी.ए.वी. शताब्दी महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)
ई-मेल: davccf.sanskrit@gmail.com

सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज अनेक सामाजिक कुरीतियों से ग्रस्त था, जिनका सर्वाधिक प्रभाव नारी की सामाजिक स्थिति पर पड़ा। बालविवाह, शिक्षा से वंचितता, पर्दा-प्रथा तथा स्त्री-अधिकारों की उपेक्षा ने नारी के व्यक्तित्व और विकास को सीमित कर दिया था। ऐसे समय में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर समाज सुधार का व्यापक आन्दोलन प्रारम्भ किया। उन्होंने वेदों की मूल भावना को पुनर्स्थापित करते हुए यह प्रतिपादित किया कि नारी और पुरुष दोनों समान रूप से समाज के महत्वपूर्ण अंग हैं तथा उन्हें समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। स्वामी दयानन्द के अनुसार स्त्री को शिक्षा, वैदिक अध्ययन तथा सामाजिक जीवन में सक्रिय भागीदारी का अधिकार होना चाहिए। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में यह स्पष्ट किया कि ज्ञान और धर्म के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष के मध्य किसी प्रकार का भेद स्वीकार्य नहीं है। प्रस्तुत शोध-पत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नारी संबंधी विचारों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि उन्होंने वैदिक परम्परा के आलोक में स्त्री की गरिमा, शिक्षा, वैवाहिक अधिकार तथा सामाजिक सम्मान की पुनर्स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। साथ ही आधुनिक स्त्री-सशक्तिकरण के संदर्भ में उनके विचारों की प्रासंगिकता को भी रेखांकित किया गया है।

कुंजी शब्द- *स्वामी दयानन्द सरस्वती, नारी सशक्तिकरण, वैदिक परम्परा, स्त्री-शिक्षा, सामाजिक सुधार, आर्य समाज।*

प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता के मूल में समता, नैतिकता और पारस्परिक सम्मान की भावना निहित रही है। इसी कारण प्राचीन भारतीय वाङ्मय में नारी को उच्च और आदरणीय स्थान प्रदान किया गया है। वैदिक साहित्य में स्त्री को केवल पारिवारिक जीवन की संरक्षिका ही नहीं, बल्कि धर्म, ज्ञान और सामाजिक जीवन की सक्रिय सहभागी के रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर स्त्रियों को विदुषी तथा ऋषिका के रूप में उल्लेखित किया गया है, जिनमें घोषा, लोपामुद्रा और अपाला जैसी विदुषी स्त्रियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में स्त्री को ज्ञानार्जन और वैचारिक अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त था। इसी भावना को आगे बढ़ाते हुए भारतीय परम्परा में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"**[2], अर्थात जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहीं समृद्धि और कल्याण का वास होता है।

किन्तु समय के साथ सामाजिक संरचना में अनेक परिवर्तन हुए, जिनके परिणामस्वरूप नारी की स्थिति में धीरे-धीरे अवनति होने लगी। विशेषतः मध्यकालीन तथा औपनिवेशिक काल में अनेक कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित हो गईं, जिनसे स्त्री के अधिकार और स्वतंत्रता सीमित हो गए। बालविवाह, पर्दा-प्रथा, शिक्षा से वंचितता तथा विधवाओं की उपेक्षा जैसी समस्याओं ने नारी के सामाजिक और बौद्धिक विकास को बाधित किया। इस परिस्थिति में उन्नीसवीं शताब्दी में विभिन्न समाज सुधार आंदोलनों का उदय हुआ, जिनका उद्देश्य भारतीय समाज को रूढ़ियों और अंधविश्वासों से मुक्त करना था। इसी सामाजिक नवजागरण के प्रमुख प्रेरणास्रोतों में स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने वैदिक धर्म की मूल भावना को पुनर्स्थापित करते हुए यह प्रतिपादित किया कि स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से समाज के अंग हैं और उन्हें शिक्षा तथा सामाजिक अधिकारों में समान अवसर मिलना चाहिए। सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट कहा है कि स्त्री को भी वेदों के अध्ययन और ज्ञानार्जन का अधिकार है।[3] उनके विचारों ने न केवल स्त्री-शिक्षा के महत्व को पुनः स्थापित किया, बल्कि सामाजिक सुधार की दिशा में एक व्यापक वैचारिक आधार भी प्रदान किया। इस प्रकार स्वामी दयानन्द के नारी संबंधी विचार भारतीय समाज में समानता, शिक्षा और नैतिक पुनर्जागरण के महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में उभरकर सामने आते हैं।

स्वामी दयानन्द के नारी सम्बन्धी वैदिक आधार

स्वामी दयानन्द सरस्वती के सामाजिक और धार्मिक चिंतन का मूल आधार वेद हैं। उनका

मत था कि वेद मानव जीवन के लिए सर्वोच्च प्रमाण हैं और उनमें स्त्री तथा पुरुष के मध्य किसी प्रकार की असमानता का समर्थन नहीं मिलता। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि वैदिक परम्परा में स्त्रियों को ज्ञान, धर्म और सामाजिक जीवन में सक्रिय भागीदारी का अधिकार प्राप्त था। स्वामी दयानन्द ने *सत्यार्थप्रकाश* में स्पष्ट लिखा है कि स्त्री और पुरुष दोनों को वेदों के अध्ययन का समान अधिकार है, क्योंकि ज्ञान का उद्देश्य समस्त मानव समाज का कल्याण है।[4] उनके अनुसार यदि स्त्रियों को विद्या से वंचित किया जाता है तो समाज का आधा भाग अज्ञान में रह जाता है, जिससे समग्र सामाजिक विकास बाधित होता है।

वैदिक साहित्य में स्त्रियों की विद्वत्ता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऋग्वेद में लोपामुद्रा और घोषा जैसी ऋषिकाओं का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियाँ भी वैदिक ज्ञान की अधिकारी थीं।[5] इसी प्रकार गृहस्थ जीवन में पत्नी की प्रतिष्ठा का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है—**"सम्राज्ञी श्वशुरे भव"**[6]। स्वामी दयानन्द ने इस मंत्र की व्याख्या करते हुए कहा कि परिवार में स्त्री को सम्मान और अधिकार प्राप्त होना चाहिए।[7] उन्होंने यह भी कहा कि वैदिक समाज में स्त्री को केवल पारिवारिक सीमाओं में नहीं रखा गया था, बल्कि उसे धार्मिक अनुष्ठानों और बौद्धिक गतिविधियों में भी सहभागी माना गया था। *संस्कार विधि* में वे स्पष्ट करते हैं कि यज्ञ, संस्कार और शिक्षा जैसे कार्यों में स्त्री की सहभागिता वैदिक परम्परा के अनुरूप है।[8] इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने वैदिक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया कि नारी की गरिमा और समानता भारतीय संस्कृति की मूल भावना है।

स्त्री-शिक्षा पर स्वामी दयानन्द के विचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्त्री-शिक्षा को समाज के नैतिक और बौद्धिक विकास का आधार माना। उनका मत था कि यदि समाज को उन्नत और संस्कारित बनाना है, तो स्त्रियों को शिक्षा से वंचित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार माता ही बालक की प्रथम शिक्षिका होती है, इसलिए उसका शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है। *सत्यार्थप्रकाश* में उन्होंने लिखा है कि स्त्री और पुरुष दोनों को व्याकरण, धर्मशास्त्र, विज्ञान और अन्य विद्याओं का अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि विद्या के बिना मनुष्य का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है।[9] उनका मत था कि शिक्षित स्त्रियाँ ही समाज में नैतिक मूल्यों और संस्कारों का प्रसार कर सकती हैं।

स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रंथ *संस्कार विधि* में भी यह स्पष्ट किया है कि बालिकाओं के लिए उचित शिक्षा व्यवस्था आवश्यक है। उन्होंने सुझाव दिया कि बालकों की भाँति बालिकाओं को भी विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलना

चाहिए।[10] उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास भी है। आर्य समाज ने स्वामी दयानन्द के इन विचारों को व्यावहारिक रूप दिया। उनके अनुयायियों ने देश के विभिन्न भागों में कन्या गुरुकुल और विद्यालय स्थापित किए, जिनका उद्देश्य स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करना था।

इस प्रकार स्त्री-शिक्षा के विषय में स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण अत्यंत प्रगतिशील था। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि समाज की वास्तविक प्रगति तभी संभव है जब स्त्रियों को भी पुरुषों के समान शिक्षा और बौद्धिक विकास का अवसर प्राप्त हो।

विवाह एवं स्त्री-अधिकार की अवधारणा

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विवाह संस्था को सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण और पवित्र व्यवस्था माना। उनके अनुसार विवाह का उद्देश्य केवल पारिवारिक जीवन की स्थापना नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक संतुलन की रक्षा करना भी है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि विवाह समानता और परस्पर सम्मान पर आधारित होना चाहिए। *सत्यार्थप्रकाश* में स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट किया है कि विवाह योग्य आयु में ही होना चाहिए, जिससे स्त्री और पुरुष दोनों शारीरिक तथा मानसिक रूप से परिपक्व होकर गृहस्थ जीवन का निर्वाह कर सकें।[11] उन्होंने बालविवाह का विरोध करते हुए कहा कि यह प्रथा स्त्री के स्वास्थ्य और शिक्षा दोनों के लिए हानिकारक है। उन्होंने यह भी कहा कि विवाह में स्त्री की सहमति अनिवार्य है। *संस्कार विधि* में वे लिखते हैं कि विवाह एक ऐसा संस्कार है जिसमें दोनों पक्षों की स्वीकृति आवश्यक है।[12] इस प्रकार उन्होंने स्त्री के वैवाहिक अधिकारों को महत्व दिया। वैदिक परम्परा में पत्नी को 'सहधर्मिणी' कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वह पति के साथ धर्म और कर्तव्यों के पालन में समान सहभागी है। स्वामी दयानन्द ने इस अवधारणा को पुनः स्थापित करते हुए कहा कि पति-पत्नी दोनों मिलकर ही गृहस्थ जीवन को पूर्णता प्रदान करते हैं।[13] इस प्रकार विवाह और स्त्री-अधिकारों के संबंध में स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण समानता और न्याय पर आधारित था।

सामाजिक कुरीतियों के विरोध में दयानन्द का दृष्टिकोण

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समाज में प्रचलित अनेक कुरीतियों का दृढ़ता से विरोध किया, विशेष रूप से वे प्रथाएँ जो स्त्रियों के अधिकारों और सम्मान के प्रतिकूल थीं। उन्होंने स्पष्ट किया कि सती-प्रथा, बहुविवाह और स्त्री-शिक्षा का अभाव जैसी समस्याएँ वैदिक धर्म की शिक्षाओं के अनुरूप नहीं हैं। *सत्यार्थप्रकाश* में उन्होंने सती-प्रथा का विरोध करते हुए लिखा है कि वेदों में कहीं भी यह

नहीं कहा गया कि पति की मृत्यु के बाद पत्नी को भी अग्नि में प्रवेश करना चाहिए।[14] उनके अनुसार यह प्रथा सामाजिक अज्ञान और अंधविश्वास का परिणाम है। स्वामी दयानन्द ने विधवा-विवाह का समर्थन करते हुए कहा कि समाज को विधवाओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। *संस्कार विधि* में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि यदि किसी स्त्री का पति मृत्यु को प्राप्त हो जाए, तो उसे पुनः विवाह करने का अधिकार होना चाहिए।[15] इसके अतिरिक्त उन्होंने पर्दा-प्रथा और स्त्रियों पर लगाए गए अनावश्यक सामाजिक प्रतिबंधों का भी विरोध किया। उनके अनुसार यह प्रथाएँ समाज के विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं और स्त्री के व्यक्तित्व को सीमित करती हैं।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर सामाजिक कुरीतियों का खंडन करते हुए एक सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसने भारतीय समाज में नई चेतना उत्पन्न की।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में दयानन्द के विचारों की प्रासंगिकता

आधुनिक युग में जब समाज में लैंगिक समानता और स्त्री-सशक्तिकरण की चर्चा व्यापक रूप से हो रही है, तब स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचार अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में ही यह प्रतिपादित कर दिया था कि समाज की उन्नति स्त्री और पुरुष दोनों के समान सहयोग से ही संभव है। स्वामी दयानन्द ने शिक्षा को स्त्री-सशक्तिकरण का प्रमुख साधन माना। *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका* में उन्होंने लिखा है कि समाज के सभी वर्गों को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार होना चाहिए।[16] यह विचार आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की मूल भावना के अनुरूप है। इसके अतिरिक्त उन्होंने विवाह, शिक्षा और सामाजिक जीवन में स्त्रियों की समान भागीदारी पर बल दिया। आज के समय में जब महिलाओं की भागीदारी राजनीति, शिक्षा और प्रशासन जैसे क्षेत्रों में बढ़ रही है, तब स्वामी दयानन्द के विचार हमें यह स्मरण कराते हैं कि भारतीय परम्परा में भी समानता का सिद्धान्त विद्यमान रहा है।

आधुनिक विद्वानों का मत है कि स्वामी दयानन्द का सामाजिक चिंतन भारतीय नवजागरण का महत्वपूर्ण आधार बना। उनके विचारों ने समाज में सुधार और जागरूकता की प्रक्रिया को गति प्रदान की।[17] अतः यह कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द के विचार आज भी सामाजिक समता और स्त्री-सशक्तिकरण की दिशा में प्रेरणा प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने नारी के सम्मान और

अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि स्त्री और पुरुष दोनों समाज के समान अंग हैं और दोनों को शिक्षा, सम्मान तथा सामाजिक अवसरों में समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए।

स्वामी दयानन्द का नारी-विषयक चिंतन केवल सैद्धान्तिक नहीं था, बल्कि व्यावहारिक सुधार की दिशा में भी अग्रसर था। उन्होंने बालविवाह, सती-प्रथा और स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा जैसी समस्याओं का विरोध किया तथा स्त्रियों को शिक्षा और सामाजिक अधिकार प्रदान करने पर बल दिया। *सत्यार्थप्रकाश* में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि समाज की उन्नति तभी संभव है जब सभी मनुष्यों को समान रूप से ज्ञान और धर्म का अधिकार प्राप्त हो।[18] आर्य समाज के माध्यम से उनके विचारों को सामाजिक स्तर पर क्रियान्वित किया गया, जिससे स्त्री-शिक्षा और सामाजिक सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। आधुनिक संदर्भ में भी स्वामी दयानन्द के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। आज भी समाज में लैंगिक समानता और स्त्री-सशक्तिकरण के प्रश्न पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं। ऐसे में उनके विचार हमें यह प्रेरणा देते हैं कि समाज में वास्तविक प्रगति तभी संभव है जब स्त्री और पुरुष दोनों को समान अवसर और सम्मान प्राप्त हों।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती का नारी-विषयक चिंतन भारतीय सामाजिक नवजागरण का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसने समानता, शिक्षा और सामाजिक न्याय की दिशा में स्थायी योगदान दिया।

संदर्भ-सूची

1. ऋग्वेद, मण्डल 10, सूक्त 39, 179
2. मनुस्मृति, अध्याय 3, श्लोक 56
3. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास 3, पृ. 63
4. वही, पृ. 64
5. ऋग्वेद, मण्डल 1, सूक्त 179
6. अथर्ववेद, काण्ड 14, सूक्त 1, मंत्र 43
7. दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. 112
8. दयानन्द सरस्वती, संस्कार विधि, पृ. 45
9. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास 2, पृ. 52
10. दयानन्द सरस्वती, संस्कार विधि, पृ. 87
11. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास 4, पृ. 79
12. दयानन्द सरस्वती, संस्कार विधि, पृ. 98
13. दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. 126

14. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास 10, पृ. 236
15. दयानन्द सरस्वती, संस्कार विधि, पृ. 101
16. दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. 97
17. Jordens, J. T. F., Dayananda Saraswati: His Life and Ideas, Oxford University Press, 1978, p. 164
18. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, पृ. 41

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. **अथर्ववेद**, सम्पादक: श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी (गुजरात), 2002।
2. **ऋग्वेद**, सम्पादक: पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली, 2011।
3. **दयानन्द सरस्वती** — *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका*, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2014।
4. **दयानन्द सरस्वती** — *संस्कार विधि*, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2015।
5. **दयानन्द सरस्वती** — *सत्यार्थप्रकाश*, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2016 (पुनर्मुद्रित संस्करण)।
6. **मनुस्मृति**, सम्पादक: पं. हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2009।
7. Jordens, J. T. F. — Dayananda Saraswati: His Life and Ideas, Oxford University Press, New Delhi, 1978।